© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 10 , Issue : 01 | January - March 2023

"एकात्म मानववाद के परिप्रेक्ष्य में पं. दीनदयाल उपाध्याय का पाश्चात्य व भारतीय जीवनदर्शन"

डॉ0 दर्शना देवी,

सहायक प्राध्यापिका (राजनीतिशास्त्र)

साऊथ पुआइण्ट डिग्री कॉलेज,

सोनीपत।

शोध लेख सार :–

इस शोधपत्र में एकात्म मानववाद की वैचारिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, पृष्ठभूमि, विकासक्रम, नामकरण, भारतीय व पाश्चात्य जीवनदर्शन तथा समाजशास्त्रीय प्रवृतियों का वर्णन किया गया है।एकात्म मानववाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, वैचारिक पृष्ठभूमि, भारतीय व पाश्चात्य

एकात्मवाद की वैचारिक पृष्ठभूमि

'एकात्म मानववाद' की वैचारिक पृष्ठभूमि के दो आयाम है। प्रथम, पाश्चात्य तथा द्वितीय, भारतीय जीवनदर्शन । अतः कहा जा सकता है कि पाश्चात्य 'मानववाद' के भारतीयकरण की प्रक्रिया की फलश्रुति है 'एकात्म मानववाद'।

मुख्य शब्द : रहस्यवाद, अनुसंधान, पुनर्जागरण व्यक्तिवाद, समाजवाद, साम्राज्यवाद व आत्मसम्मान

एकात्मक मानववाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :–

एकात्म मानववाद प्राचीन यूनान व प्राचीन भारत के आधुनिक संस्करण 16वीं व 17वीं सदी के यूरोपीय पुनर्जागरण तथा 20वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण के मेल का परिणाम है। ईश्वर एवं रहस्यवाद के खिलाफ प्राचीन ग्रीक दर्शन के प्रकाश में मानववाद का प्रणयन हुआ। कोपरनिक्स, गेलिलियो और न्यूटन जैसे वैज्ञानिको के अनुसंधानों ने चिंतन की दिशा एवं दृष्टि को ही बदल दिया।[1]

इटैलियन पुनर्जागरण यूरोपव्यापी हो गया था। अदृश्य सत्ताओं के स्थान पर विवके, विज्ञान, विमर्श व साहस की सत्ताओं की स्थापना हुई। मेकियावेली से लेकर मार्क्स व मिल तक की एक विचारक श्रृंखला उत्पन्न हुई, जिसमें से पार्थिव मानववाद उसकी लौकिक प्रवृत्ति एवं अनेक नवीन वादो का जन्म हुआ। राष्ट्रीय राज्य की नवीन राजनैतिक इकाई उत्पन्न हुई तथा व्यक्तिवाद व समाजवाद की परस्पर उग्र विरोधी धारणाओं की उत्पत्ति हुई।[2]

यूरोपीय पुनर्जागरण तथा यूरोपीय साम्राज्यवाद का विकास साथ–साथ ही हुआ था। यूरोपीय सम्पर्क, उसके साम्राज्यवाद की चोट एवं प्रजागृत आत्मसम्मान में से 20वीं सदी में एशियाई पुनर्जागरण का जन्म हुआ। भारत ने उसका नेतृत्व किया। एशियाई पुर्नजागरण यूरोपीय मानववाद एवं भारतीय आत्मवाद का संगम स्थल बन गया था। राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द व स्वामी दयानन्द जैसे लोगों ने इस पुर्नजागरण के शंख को बजाया। अपनी अमेरिका व यूरोप की यात्रा के बाद स्वामी विवेकानन्द

ने पुनर्जागरण के बारे में कहा था कि, ''यूरोप तथा अमेरिकावासी तो ग्रीको की समुन्नत मुखीज्जवलकारी संतान है परन्तु आधुनिक भारतवासी प्राचीन आर्यकुल गौरव नहीं रख पाये। किंतु आधुनिक भारतवासियों में छिपी हुई पैतृक शक्ति अब भी विद्यमान है। उस समय की महाशक्ति की कृपा से उसका पुनर्जागरण होगा।''

पुनर्जागरण के आहान में से भारतीय स्वाधीनता संग्राम का उदय हुआ था। एक वैचारिक मंथन शुरू हुआ, जिसमें से राजा राममोहन राय के ब्रह्मवाद, विवेकानन्द जी के 'समन्वित वेदान्त' तथा स्वामी दयानन्द के 'आर्यत्व' के संदेश रूपायित हुए थे। इसी धरती से लोकमान्य तिलक के कर्मवादी स्वराज्यवाद, अरविंद के 'वेदान्तिक स्वराज्य, गोखले, वर्नाडे व .....जी के उदारवादी सुराज्यवाद के चिंतन के रूप में विकास हुआ। इसी को महात्मा गांधी के रामराज्य, लोकनायक जयप्रकाश नारायण के सर्वोदय के विचारों ने जवाहरलाल नेहरू के प्रजातंत्रवाही समाजवाद ने तथा आचार्य नरेन्द्र देव के भारतीय समाजवाद ने और आगे बढ़ाया। मार्क्सवादी भारतीय एम0 एन0 रॉय ने गैर–साम्यवादी बनकर 'नव मानववाद' का विचार प्रतिपादित किया। विनायक दामोदर सावरकर ने 'हिन्दुत्व दर्शन' को राजनैतिक विचारधारा का आधार बनाया। इस सारे चिंतन में भारतीय पुर्नजागरण प्रतिपादित पाश्चात्य एवं भारतीय विचारों का परस्पर सम्मिश्रण हो रहा था। इसी दौरान भारत स्वतन्त्र हुआ। इस विचार श्रृंखला की नवीनतम कड़ी थे, दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद।

राजा राममोहन राय से लेकर दीनदयाल उपाध्याय तक लगभग 100 वर्ष से भी अधिक का समय है, जिसमें पाश्चात्य एवं भारतीय जीवन–दर्शन, व्यवहार तत्वज्ञान में एक सतत् संघर्ष चलता रहा। इस मंथन का नवरसायन 'एकात्म मानववाद' ही होगा क्या, यह तो कहना कठिन है, लेकिन यह विचार भारत की 21वीं शताब्दी की एक प्रखर मनीषा का प्रतिनिधित्व करता है, जो भारत को आधुनिक बनाना चाहती है।

भारत में जवाहरलाल नेहरू के 'लोकतांत्रिक समाजवाद का विचार 20वीं सदी के स्वर्णिम सपने ले रहा था। नेहरूवाद के खिलाफ भारत के विरोधी दलों ने 'गांधीवाद' को अपना शस्त्र बनाया था। दीनदयाल उपाध्याय ने 'एकात्म मानववादी' को 'गांधीवादी–समाजवादी' घोषित कर रहे थे। चौ0 चरण सिंह 'ग्रामोन्मुखी गांधीवाद' के प्रवक्ता बने। 'गांधीवाद' भारतीयता का प्रतीक बन गया। इन्हीं संदर्भो में हमारे लिए विश्लेषणीय है, दीनदयाल उपाध्याय का 'एकात्म मानववाद'।[3]

एकात्म मानववाद की वैचारिक पृष्ठभूमि :–

'एकात्म मानववाद' की वैचारिक पृष्ठभूमि के दो आयाम है। प्रथम, पाश्चात्य जीवनदर्शन तथा द्वितीय, भारतीय संस्कृति। अतः कहा जा सकता है कि पाश्चात्य 'मानववाद' के भारतीयकरण की प्रक्रिया की फलश्रुति है 'एकात्म मानववाद'।

(क) एकात्म मानववाद का पाश्चात्य जीवनदर्शन :–

पाश्चात्य जीवन के धार्मिक अंधविश्वास ने मानव के अध्यात्म तत्व को इतना रहस्यवादी, परमात्मावादी तथा ढ़ोगी बना दिया था कि प्रतिक्रियावश वह जड़वादी या भौतिकवदी हो गया। इस भौतिकवाद ने उसे असंवेदनशील यांत्रिकता की ओर धकेला तथा स्वभावतः प्रतिक्रियावादी बना दिया। इसलिए 'मानववाद' जहां यूरोपीय पुर्नजागरण की संस्कृति है वहीं 'जड़वाद' उसकी विकृति।

व्यक्तिवाद की विकृति हैं पूंजीवाद। मानवीय साहस की विकृति है साम्राज्यवाद, राष्ट्रवाद की विकृति है फासी संवाद एवं नाजीवाद, लौकिकता की विकृति है, असंवेदनीय यंत्रवाद तथा उसके विवके व अनुसंधान की विकृति है असयमित भोगवाद।

पं0 दीनदयाल जी पाश्चात्य जीवन की श्रेष्ठता को स्वीकार करते थे लेकिन उसकी विकृति के खिलाफ ज्यादा चौकस थे।

उपाध्याय जी का विचार था कि पश्चिम की अच्छी बातों में भी एक पारस्परिक तालमेल का अभाव है। उन्होंने कहा था कि, ''राष्ट्रवाद प्रजातंत्र, समाजवाद सभी के मूल में समता का ही भाव है, समता–समानता से भिन्न है। इन तीन प्रवृतियों ने यूरोप की राजनीति को प्रभावित किया है। ये सब आदर्श है, जो अच्छे हैं। इनमें से प्रत्येक आदर्श, व्यवहार में एक दूसरे का घातक बन जाता है। राष्ट्रवाद, विश्व शांति के लिए खतरा पैदा करता है। प्रजातंत्र पूंजीवाद के मेल से शोषण का कारण बन गया। पूंजीवाद को समाप्त कर समाजवाद आया, तो उसने प्रजातंत्र तथा उसके साथ ही व्यक्ति की स्वतंत्रता की बली ले ली। अतः आज पश्चिम के सामने यह प्रश्न खड़ा है कि इन सभी अच्छी बातों का तालमेल कैसे बैठाया जाये ?''[4]

इसलिए दीनदयाल उपाध्याय पश्चिम के अंधानुकरण के विरोधी थे, लेकिन वे सभी मानवीय प्रयत्नों का आदर करते थे। पश्चिमी के प्रतिक्रियावाद, जड़वाद, एकागी दृष्टिकोण, जीवन का खण्ड़–खण्ड़ विचार तथा उपभोगवाद की दीनदयाल उपाध्याय ने बहुत आलोचना की। पश्चिमी विचार हमें क्यों अग्राहा है ? उन कारणों को निम्न प्रकार बिन्दुबद्ध किया है[5] :–

1. पश्चिम का विचार केवल ज्ञानेन्द्रियों पर ही निर्भर है। पूर्ण ज्ञान 'प्रज्ञा' से ही आता है। हमारे ऋषि मुनियों ने अंदर से देखकर 'समग्रता का दर्शन' किया। हमारा केन्द्र 'पूर्णता' है, अन्यों का एकांगी।
2. पश्चिम द्वारा वर्णित किया गया 'व्यक्ति बड़ा या समाज' ? क्योंकि व्यक्ति और समाज अविभक्त है।
3. 'प्रकृति विजय' की अवधारणा अहंवादी है। पूंजीवादी शोषण व समाजवादी तानाशाही है।
4. 'समर्थ ही जीवित रहता है कि जीवशास्त्रीय अवधारणा की समाजशास्त्री मान्यता ने समाज में 'जंगल के कानून' की व्यवस्था उत्पन्न की। 'स्पर्द्धा व संघर्ष' से विकास होती है, इस गलत अवधारणा का यही आधार है। यह असभ्यता है। सभ्यता के विकास का मतलब ही यह है कि 'कमजोर भी जीवित रह सकें'। इसलिए राज्य की स्थापना हुई, इसी के लिए हम समाज व्यवस्था व 'कानून के शासन' की स्थापना करते हैं।

5. 'ईश्वर' व 'शैतान' का द्वैत, पश्चिम को बाइबिल की देन है। इसी द्वैतवादी भावना से डार्विन व मार्क्स निर्देशित हुए थे। दलीय संघर्षवादी जनतंत्र व वर्ग–संघर्षवादी साम्यवाद इसी मनोभाव की उपज है।
6. मनुष्य की दैवी सम्पदा की उपेक्षा कर उन्होंने मानव को एक स्वार्थी मनुष्य माना है। उनका राज्यशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र सब व्यक्गित स्वार्थ पर आधारित है। यहां तक कि परमार्थिक भावों को भी इसी दृष्टि से स्वीकार किया है। Honesty is the best policyकी अवधारणा का यही आधार है।
7. राष्ट्रीय राज्य, संवैधानिक राज्य, समाजवाद तो 'राज्यवाद' ही है, इन कल्पनाओं ने समाज की अनौपचारिक सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को आहत किया। राजनीति सर्वग्रासी बन गई।
8. चर्च राज्य की प्रतिक्रिया में लौकिक राज्य ईश्वरवाद की प्रतिक्रिया में मानववाद, निंरकुश समाज व्यवस्था की प्रतिक्रिया में व्यक्तिवाद तथा शोषण की प्रतिक्रिया में समाजवाद का प्रणयन हुआ। अतः यह मानव के विधायक विवके का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। प्रतिक्रियावश समाज की पूर्व स्थितियों में सम्पन्न हुई मानवीय सकारात्मकता का भी निषेध करता है और मानव को संवेदनशील बनाने में 'धर्म' की निर्णायक भूमिका रही है। अध्यात्मवाद का निषेध भी अंधविश्वास या ईश्वरीय रहस्यवाद की अतिरिक्त प्रतिक्रिया है, जिसने उसे जड़वादी बना दिया।
9. भौतिकतावाद में से स्वतंत्रता, समानता व भ्रातृत्व की प्रेरणा नहीं मिल सकती, इसीलिए मेजिनी द्वारा कल्पित 'मानवतावादी यूरोपीय राष्ट्रवाद' आज तक भी व्यवहार में नही आ सका तथा स्वयं यूरोप, अमेरिका व रूसी साम्राज्यवाद में विभक्त हो गया।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत किया गया पश्चिम का उर्पयुक्त विश्लेषण, आधुनिक गांधीवादी विचारदृष्टि के अनुकूल है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का हिन्दुत्वादी तथा राष्ट्रवादी मन पश्चिम के विचारों के खिलाफ जितना उसकी तर्कसंगत बुराईयों के कारण था, उतना ही उसकी विदेशियत के कारण भी था। साथ ही पं0 जवाहरलाल नेहरू की पश्चिम प्रभावित 'लोकतांत्रिक समाजवाद' की अवधारणा के आधार पर चलने वाली कांग्रेस के समानातंर एक राष्ट्रवादी विकल्प उत्पन्न करना था, अतः उपाध्याय पश्चिम की विकृति के प्रति ज्यादा सावधान रहे। उन्होंने अतिवादी होकर, पश्चिम के पूर्ण विचार को ही मानवीय विकृति में से उत्पन्न विचार घोषित कर दिया। उन्होंने कहा था कि, ''यदि संघर्ष है तो वह प्रकृति का अथवा संस्कृति का द्योतक नहीं है। जिस मात्स्य न्याय या जीवन में काम क्रोधादि षटविकारों को हमने स्वीकार किया है, किन्तु इन सब प्रवृतियों को हमने अपनी संस्कृति का आधार नहीं बनाया।[6] ''षट्विकारों के साथ पश्चिम द्वारा स्वीकृत मानवीय प्रवृतियों को निम्न प्रकार स्वीकृत किया जा सकता है।

काम – उपभोगवाद

क्रोध – प्रतिक्रियात्मक विचार

मद – प्रकृति पर विजय तथा भौतिकवादी मानववाद

लोभ – स्वार्थ

मोह – लोलुपता (अतिवादी महत्वाकाक्षाएं)

मत्सर – संघर्ष एवं स्पर्धा (शक्तिशाली की विजय)

स्वतंत्रता समानता व बंधुता का आदर्श, विवके एवं अनुसंधान का आधार एवं साहसिक प्रयोगवाद, पश्चिम द्वारा अर्जित श्रेष्ठतव के लिए कारणी भूत है। इन घोषित श्रेष्ठताओं को पूरी तरह से प्राप्त न कर सकने के जो अनेक कारण हैं, उपाध्याय जी मानते थे कि उनमें से बड़ा कारण यह है कि मानव की विकारमूलक प्रवृत्ति को उन्होंने, इन अच्छे लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रक्रिया के रूप में स्वीकार कर लिया। परिणास्वरूप इस प्रवृत्ति ने उनके हर अच्छे आदर्श को परस्पर लडवा दिया। अतः पश्चिम से व्यवहार करते समय हमें चौकस रहना चाहिए।

पश्चिम की प्रगति एवं विचार प्रवाह के प्रति उपाध्याय जी का उपर्युक्त चिंतन ''अपनी अहमियत प्रकट करवाने वाला है। वे पश्चिम को मानवीय सभ्यता की मुख्यधारा मानकर उसमें डूबने को तैयार नहीं थे। अपने राष्ट्रीय स्वत्व के साथ मानव सभ्यता की धारा को समृद्ध करने की मानसिकता से उपाध्याय जी ने भारतीय संस्कृति को अपने चिंतन का आधार बनाया। उसी आधार पर उनका 'एकात्म मानववाद' विकसित हुआ।

(ख) एकात्म मानववाद का भारतीय जीवनदर्शनः–

भारतीय संस्कृति में एक दीर्धकालिक निरतरता है। एशिया व यूरोप की तुलना करते हुए श्री अरविंद लिखते है कि, ''यूरोप शताब्दियों में जीता है और एशिया युगों में। यूरोप राष्ट्रों में बटा है, एशिया सभ्यता व संस्कृतियों में। सारे यूरोप की एक ही सभ्यता है, जिसका स्त्रोत एक ही है, वह पुरानी और कहीं से ली हुई है। एशिया में तीन सभ्यताएं हैं, जो मौलिक और स्थानीय हैं। यूरोप की हर चीज छोटी और अल्पजीवी है। उसे अमरता का रहस्य नहीं मिला है। आज यूरोप विज्ञान, दर्शन, सभ्यता आदि के जिन शिखरो पर हॉफते–हॉफते चढ़ रहा है, उन ऊचाईयों तक एशिया बहुत पहले ही चढ़ चुका था, लेकिन उसके बाद कुछ ढील आ गई थी, ह्रास और उद्योगति नहीं आई।

भारत के लिए आगे श्री अरविन्द लिखते है कि, ''संसार के इतिहास में ऐसा कोई देश नहीं है जो इस तरह इतने दिनों तक विदेशी राज्य के नीचे पिसकर भी ऐसी अदम्य शक्ति दिखला सका हो। यही नैतिक बल यही जड़ तक पहुंचने की क्षमता अपने स्व के ऊपर पूरा अधिकार ये एशिया की शक्ति के रहस्य है। 'स्वराट' ही 'सम्राट' बन सकता है।''[7]

श्री अरविन्द विवेचन करते हैं कि, ''भारत में बड़े–बड़े राज्यों की स्थापना जनतंत्रात्मक विधान के लिए घातक हुई। यूनानियों को अपनी प्रिय स्वाधीनता से 'हेलेनिक' जगत में प्रवेश करते ही हाथ धोने पड़े थे। रोम को साम्राज्य बनते ही अपनी पुरानी पद्धति को छोड़कर, सर्व–समर्थ राजाओं के विधान को स्वीकार करना पड़ा था। जनतंत्र सारे संसार से लुप्त हो गया था। आखिर निर्वाचन पद्धति का जन्म हुआ। चन्द्रगुप्त और अशोक के साम्राज्य नई तरह के थे। इनके ऊपर शायद हेलेनिक साम्राज्य का प्रभाव

था। हिन्दू राजा सीजरो की तरह बिल्कूल निरंकुश नहीं बन पाते थे। वह हमेशा उन विधि–विधानों का पालने करते थे, जिनको बनाने में उसका कोई हाथ न होता था। वह जनमत की ज्यादा अवेहलना भी नहीं कर सकते थे। जब राजा बहुत ज्यादा निरपेक्ष बन गए, तब भी उनका कर्तव्य था समाज में सुव्यवस्था और कल्याण के लिए कार्य करना। उन्हें कभी प्रजा की अवहेलना करने का अधिकार नहीं मिला भारत में निरंकुश राजाओं का प्रवेश हुआ। मुसलमानों के साथ, जो इस गुण को यूरोप और ईरान से लाए थे, लेकिन भारतीय स्वभाव ने कभी इसे पूरी तरह स्वीकार नहीं किया।'[8]

दीनदयाल उपाध्याय जी भारतीय संस्कृति के प्रति एक राष्ट्रवादी के नाते स्वाभिमान का भाव रखते थे। सब अच्छी बाते भारतीय संस्कृति के खाते में तथा बुरी बातें मानवीय स्वभावदोष, कालबाह्यता तथा विदेशी सम्पर्क के खाते में जमा है। एक विचारशील व्यक्ति होते हुए भी, भारतीय संस्कृति के प्रति उपाध्याय की 'भक्त' दृष्टि है। दुनिया की अन्य तथा विशेषकर पश्चिमी संस्कृति की तुलना में, वे भारतीय संस्कृति के समर्थक थे। उनकी इस भारतीय दृष्टि को निम्न प्रकार से वर्णित किया जा सकता है :–

1 भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोण एकात्मवादी है।

2 भारतीय जीवन अध्यात्म प्रधान है, हमारा केन्द्र है, पूर्णता, एकागिता नहीं। भारतीय संस्कृति व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि व परमेष्टि को स्वतंत्रताओं के बावजूद अभिव्यक्त मानती है।

3 'धर्म' भारतीय संस्कृति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है। धर्म के कारण भारत में राजा, प्रजा, समाज, व्यक्ति सभी सुसयमित हुए। प्रकृति के शाश्वत व खोजे हुए नियम धर्म हैं।

4 एक ही सत्य का विद्वान लोग बहुत प्रकार से वर्णन करते हैं, इसलिए भारत में संसार के सर्वाधिक सम्प्रदाय विद्यमान हैं।

5 भारत का समाज दर्शन 'विराट' पुरूषवादी है। संस्कृति अवधारणा 'चित्ति' मूलक है, राष्ट्र 'संस्कृतिवादी' तथा व्यक्ति 'आत्मवादी' है।

6 भारतीय संस्कृति मानव की 'चतर्परूषार्थी' आवश्यक्ताओं की प्रतिपादक है।

7 भारतीय संस्कृति जीवन का केन्द्र है, राज्य का नहीं, धर्म व संस्कृति को मानती है।

8 जो पिण्ड़ में है, वहीं ब्रह्माण्ड़ में है तथा सम्पूर्ण भूत जगत में एक ही आत्मा व्याप्त है। अतः भारतीय संस्कृति, 'पूरकता' व 'समन्वयवादी' है।

9 भारतीय संस्कृति में हर व्यक्ति अपनी कल्पना के अनुसार ईश्वर की आराधना करने के लिए स्वतंत्र है। अतः भारत में ईश्वरवादी, अनीश्वरवादी, एकेश्वरवादी, बहुदेववादी, सगुण भक्त, निर्गुण भक्त, आत्मवादी, नियतिवादी तथा नास्तिक और ब्रह्मावादी आदि सब प्रकार के लोगों का समावेश है।

10 भारतीय संस्कृति 'विश्ववादी' संस्कारवादी' तथा 'समन्यवादी' है।

दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपने विभिन्न लेखों व भाषणों में भारतीय संस्कृति को उपर्युक्त प्रकार से वर्णित किया है कि, ''हमने अपनी प्राचीन संस्कृति पर विचार किया है। हमारा ध्येय संस्कृति का संरक्षण नहीं, अपितु उसे गति देकर सजीव व सक्षम बनाना है। हमें अनेक रूढ़िया समाप्त करनी होगी, जो राष्ट्र की एकता के लिए घातक सिद्ध हो रही हैं, हम उनको समाप्त करेगें।''[9]

पुरानी संस्थाओं से उत्पन्न निहित स्वार्थो के विषय में उपाध्याय जी कहते हैं कि, '' कुछ लोग जो प्रकृति से अपरिवर्तनवादी है, किन्तु बिना औषधि के रोग ठीक नहीं होता, व्यायाम का कष्ट उठाए बिना बल भी नहीं आता। अतः हमें यथास्थिति का मोह त्यागकर नवनिर्माण करना होगा।''[10]

दीनदयाल उपाध्याय जी भारतीय संस्कृति के उपासक थे। उनकी भारतीय प्रकृति, समन्वय दृष्टि वाली थी। उनका सूत्र था कि, ''हम मानव के ज्ञान और उपलब्धियों का संकलित विचार करें। इन तत्वों में जो हमारा है उसे युगानुकूल और जो बाहर का है उसे देशानुकूल ढालकर हम आगे चलने का विचार करें और रूस या अमेरिका के अनुयायी नहीं बने।''[11]

प्रजातंत्र और समाजवाद, दोनों परस्पर विरोधी न होकर समन्वित हो सकते हैं। समाज अपने हित के लिए कुटुम्ब से लेकर राज्य तक तथा विवाह से लेकर सन्यास तक अनेक संस्थाओं का निर्माण करता है। समाजवाद और प्रजातंत्र दोनों की सफलता गैर–सरकारी तथा राजनीति निरपेक्ष आदोलनों तथा शिक्षा पर निर्भर है। लोक संस्कार का सर्वाधिक महत्व है। स्वामी दयानन्द, गांधी जी और हेडगेवार ने जिस प्रकार प्रेरणा पैदा की थी, उस ओर यदि देश का ध्यान गया होता तो समाज की धारणाशक्ति प्रबल होती। इससे ही राष्ट्र की 'चिति' जागृत होकर उसका 'विराट' प्रबल होगा।''[12]

समन्वय की इस विचारधारा से एकात्म मानववाद पैदा हुआ। हमें ज्ञान का आदान–प्रदान विश्व के प्रत्येक देश से करने से कोई संकोच नहीं होना चाहिए। परन्तु ऐसा करते समय हमें अपने जीवन मूल्यों को स्मरण रखना होगा। भारतीय जनसंघ आत्मा का साक्षात्कार करने वाले उन लोगों का आंदोलन है जो केवल विरोध के लिए नहीं जीते है बल्कि देश को निर्माण की नई राह पर तीव्र गति से ले जाना चाहते हैं।[13]

बम्बई के अपने ऐतिहासिक भाषण में जब उपाध्याय ने 'एकात्म मानववाद' की व्याख्या प्रस्तुत की थी, तब बहुत भावपूर्ण शब्दों में उन्होंने कहा था कि, '' विश्व का ज्ञान और आज तक की अपनी सम्पूर्ण परम्परा के आधार पर हम ऐसे भारत का निर्माण करेंगे, जो हमारे पूर्वजों के भारत से भी अधिक गौरवशाली होगा, जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्ति का विकास करता हुआ, सम्पूर्ण मानवता ही नहीं, अपितु सृष्टि के साथ एकात्मता का साक्षात्कार कर 'नर से नारायण' बनने में समर्थ हो सकेगा। यह हमारी संस्कृति का शाश्वत दैवी और प्रवहमान रूप है। चौराहे पर खड़े विश्व मानव के लिए यही हमारा दिग्दर्शन है।''[14]

उपसंहार

पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रणीत 'एकात्म मानववाद' की यही ऐतिहासिक व तात्विक पृष्ठभूमि है। इतिहास की वह धारा, जिसके कारण यूरोप तथा एशिया में पुर्नजागरण का संचार हुआ, परिणास्वरूप

पाश्चात्य एवं भारतीय विचारों में परस्पर मंथन हुआ। पाश्चात्य विचार व भारतीय संस्कृति की तात्विक संस्कृति की तात्विक पृष्ठभूमि में, जहां पाश्चात्य प्रयोगों तथा भारत की प्राचीन संस्कृति का महत्व है, वहीं स्वातत्र्योतर भारतीय का राजनैतिक चिंतन निर्णायक रूप से 'एकात्म मानववाद' में सृजन का कारण बना।

संदर्भ

1 महेश चन्द्र शर्मा – दीनदयाल उपाध्याय कृर्तव्य एवं विचार पृ0 398

2 B.N. Ganguli, "Ideologies and the Sociel Science" P-14-15

3 महेश चन्द्र शर्मा – पृ0 402

4 एकात्म दर्शन, राष्ट्रवाद की सही कल्पना, पृ0 10

5 बौद्विक पंजिका, राजस्थान 4 जून 1964 को संघ शिक्षा वर्ग में दिए गए बौद्विक वर्ग के आधार पर।

6 'एकात्म मानववाद' पृ0 18

7 श्री अरविन्द वन्देमातरम में लिखा गया लेख 'यूरोप और एशिया' 3 जुलाई 1908 पृ0 69–71

8 श्री अरविन्द 'प्राचीन भारत की राज्य व्यवस्था' वन्देमातरम 20 मार्च 1908

9 एकात्म दर्शन, राष्ट्रजीवन के अनुकूल अर्थ – रचना पृ0 72

10 वहीं पृ0 71

11 वहीं पृ0 73

12 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखा गया अप्रकाशित लेख 'स्वतंत्रता के साधन और सिद्धि' दीनदयाल शोध संस्थान की फाइल से प्राप्त, दिल्ली पृ0 3

13 पाञचजन्य 21 फरवरी, 1966 पृ0 10 (उत्तर प्रदेश जनसंघ के मुरादाबाद अधिवेशन में दीनदयाल उपाध्याय का भाषण)

14 एकात्म दर्शन राष्ट्रजीवन के अनुकूल अर्थ–रचना, पृ0 73